R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-20, अङ्क-10 अक्टूबर 2020 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

अक्टूबर का E - अंक

आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी की
300वीं जन्म-जयन्ती वर्ष के अवसर पर विशेषांक

वैराग्य वाणी

भाई! यह तेरे नरकादि दु:खों की कथा, तुझे उनसे छूटने के लिए सुनायी जा रही है। स्वयंभूरमण समुद्र का पानी, जो असंख्य योजन में विस्तरित है और स्वाद में मधुर है; वह सारा पानी पी जाने पर भी जहाँ प्यास नहीं बुझेगी, इतनी तो जिनकी तृषा है, परन्तु पीने के लिए पानी की एक बूँद भी नहीं मिलती। असह्य तृषा से वे नारकी पीड़ित रहते हैं। चैतन्य के शान्तरस के बिना उनकी तृषा कैसे मिटेगी? जब अवसर था, तब तो चैतन्य के शान्तरस का पान नहीं किया और उससे विरुद्ध अनन्त क्रोधादि कषायरूप अग्नि का सेवन किया, तो बाहर में तीव्र प्यास के दु:ख में वे जीव जल रहे हैं। मुनिवर तो चैतन्य के उपशम रस में ऐसे लीन होते हैं कि पानी पीने की वृत्ति भी छूट जाती है। यहाँ तो थोड़ा बीमार पड़ा हो और पानी आने में थोड़ी देर हो जाए तो क्रोधित हो उठता है कि 'सब कहाँ मर गये? कोई पानी क्यों नहीं देता?' परन्तु भाई! जरा धीरज रखना सीख, थोड़ा सहन करना सीख। नरक में तुझे कौन पानी पिलानेवाला था? पानी का नाम लेते ही मुँह में उबलता रस डाला जाता था। यह सब भूल गया।

अरे! अनन्त काल में महादुर्लभ मनुष्य देह प्राप्त हुआ, सत्समागम प्राप्त हुआ, इस समय आत्मा का हित कर लेने योग्य हैं — इस प्रकार आत्महित करने का विचार भी नहीं करता और रात-दिन चौबीसों घण्टे पैसों का भिखारी हो रहा है। वह जीव पैसों का किङ्कर होकर मनुष्यपना गँवा देता है। मूढ़ जीव, आत्मा को चूककर लक्ष्मी का चाकर होता है।

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-20, अङ्क-10 (वी.नि.सं. 2546; वि.सं. 2076) अक्टूबर 2020

जिनवर दरबार तुम्हारा....

जिनवर दरबार तुम्हारा स्वर्गों से ज्यादा प्यारा
जिन वीतराग मुद्रा से परिणामों में उजियारा।
ऐसे तो हमारे भगवन है चरणों में समर्पित जीवन है ।टेक ॥

समवसरण के अंदर, स्वर्ण कमल पर आसन,
चार चतुष्टयधारी बैठे हो पद्मासन;
परिणामों में निर्मलता तुमको लखने से आये,
फिर वीतरागता बढ़ती जो भी जिन दर्शन पायें,
ऐसे तो हमारे..... ॥1 ॥

त्रैलोक्य झलकता भगवन कैवल्य कला में ऐसे,
तीनों ही कालों में कब क्या होगा और कैसे;
जग के सारे ज्ञेयों को, तुम एक समय में जानो,
निज में ही तन्मय रहते, उनको न अपना मानो,
ऐसे तो हमारे..... ॥2 ॥

दिव्यध्वनि के द्वारा मोक्षमार्ग दर्शाया,
प्रभु अवलंबन लेकर मैंने भी निजपद पाया;
मैं भी तुमसा बनने को, अब भेदज्ञान प्रगटाऊँ,
निज परिणति में ही रमकर अब सम्यक् दर्शन पाऊँ,
ऐसे तो हमारे..... ॥3 ॥

साभार : मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-
श्री अंश जैन
सुपुत्र
श्री अमितचतरसेन जैन
C/o. **श्री सी. एस. जैन,**
88 टैगोर विला, टैगोर कॉलोनी,
देहरादून - 248001
(उत्तरांचल)

क्या - कहाँ

जिज्ञासा होती है कि 5
पाप के नाम 16
आचार्यदेव परिचय शृंखला 22
सर्वज्ञकथित वस्तुस्वरूप 25
चैतन्यतत्त्व ही उपादेय है 29
जिस प्रकार-उसी प्रकार 30
पधारो ज्ञायकदेव, पधारो 31
समाचार-दर्शन 33

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

जिज्ञासा होती है कि—जीव कैसा होगा ?

आचार्यदेव सात बोलों द्वारा जीव का अलौकिक स्वरूप समझाकर सुंदर स्वसमयपना कैसे होता है—वह बतलाते हैं।

[श्री समयसार गाथा 2 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन से]
(वीर संवत् 2498, मगशिर शुक्ला 1 से 4)

मंगलाचरणरूप से सिद्धभगवंतों को आत्मा में स्थापित करके अर्थात् सिद्धसमान साध्यरूप जो शुद्ध आत्मस्वरूप, उस ओर ज्ञान को एकाग्र करके, समयसार में सर्वप्रथम आचार्यदेव 'समय' अर्थात् जीव नामक वस्तु, उसका स्वरूप बतलाते हैं।

'समय' उसे कहा जाता है जो एकसाथ जानने और परिणमन करने—ऐसी दोनों क्रियारूप हो। जीववस्तु जानती है और परिणमित होती है, इसलिये वह समय है। जीव अनंत हैं; उन सब जीवों में जानने और परिणमन करने की दोनों क्रियाएँ एकसाथ सदा होती हैं। अब वे क्रियाएँ धर्मी को कैसी होती हैं और अज्ञानी को कैसी होती हैं—वे दोनों प्रकार भी इस दूसरी गाथा में बतलाये हैं। टीका में पहले सात बोलों से जीव का अलौकिक स्वरूप बतलाकर, पश्चात् उसकी अवस्था के दो प्रकार (स्वसमयपना और परसमयपना) किसप्रकार है, वह समझाया है।

धर्मी आत्मा अपनी निर्मल ज्ञानपर्याय में स्थित है

पर से भिन्न आत्मा की स्वानुभूति द्वारा जो आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित हुआ है, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्रपर्याय में स्थित आत्मा स्वसमय है। आत्मा स्वयं परिणमित होकर अपनी पर्याय में आया है, इसलिये वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित है। ऐसी पर्यायरूप से परिणमित आत्मा, वह स्वसमय है; वह धर्मात्मा है।

— स्वोन्मुख हुई निर्मल पर्यायरूप जो परिणमित हुआ, वह आत्मा स्वसमय है।

— पर के साथ एकत्वबुद्धि से मिथ्यात्वभावरूप जो परिणमित हुआ, वह परसमय है।

पहले अज्ञानदशा में आत्मा मिथ्यात्वादि परभावोंरूप से परिणमन करके उनमें स्थित था, वह परसमय था; उसे पुद्गलकर्म में ही स्थित कहा है। अब पर से भिन्न स्व को जानकर स्वभाव में एकत्वरूप से परिणमित होकर जीव स्वयं स्वसमय हुआ है।

आत्मा अपनी पर्याय में एकत्वरूप परिणमन करता है और उसी में स्थित वर्तता है। धर्मी का आत्मा कहाँ है ? पर में नहीं है, रागादि में नहीं है, स्वयं जिस निर्मल पर्यायरूप परिणमित हुआ है, उसी में वह स्थित है।—ऐसा स्वसमयरूप जीव, वह सच्चा जीव है। ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप आत्मा का जो सत्स्वभाव था, उस स्वभाव में एकत्वरूप से आत्मा अपने स्वभाव के सम्यक्भावरूप से परिणमित हुआ, जिससे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय प्रगट हुई, उस पर्याय में स्थित आत्मा स्वसमय है; वह सुंदर सुशोभित है।

परभावों को अनुभूति से भिन्न कहा, परंतु अनुभूति के साथ आत्मा को अभिन्न-एक कहा; आत्मा और उसकी अनुभूति को अभेद करके उसी को शुद्धनय कहा, उसी को जिनशासन कहा।—इसप्रकार आत्मा अपने जिस शुद्धभावरूप परिणमित हुआ, उसरूप ही वह है, अर्थात् उसी में स्थित हैं; उसे स्वसमय कहते हैं।

'जीव' अर्थात् भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन-आनंद, ऐसे अनंत स्वभावरूप एक वस्तु है; वह जब अपने में एकत्वरूप से ज्ञान-दर्शन-आनंदरूप से परिणमित हुआ, तब वह रागादि परभाव में स्थित नहीं रहा, अपने स्वरूप में ही तन्मय—स्थिर रहा, इसलिये वह स्वसमय है। ऐसे स्वसमयरूप से आत्मा शोभता है, वही एकत्व में शोभता हुआ सुंदर है। ऐसे आत्मा से भिन्न समस्त परभावों को पुद्गलकर्म के साथ तन्मय गिनकर, मिथ्यात्वादि अज्ञानभाव में स्थित जीव को 'पुद्गलकर्मप्रदेश में स्थित'

कहकर 'परसमय' कहा है। ऐसे स्वसमय तथा परसमय—दोनों को जानकर, स्वयं अपने आत्मस्वभाव में एकत्वरूप से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परिणमित होना, वह तात्पर्य है।

- ❀ यहाँ एकत्वरूप से परिणमित होना और जानना, उसका नाम 'समय' है।
- ❀ जो स्व में एकत्वरूप से परिणमित हो और स्व को एकत्वरूप से जाने, वह स्वसमय है।
- ❀ जो पर में एकत्व मानकर रागादिरूप परिणमित हो और पर को एकत्वरूप से जाने, वह परसमय है।
- ❀ परसमयपना दु:खदायक है, उसे छोड़ने के लिये और सुखदायक ऐसा स्वसमयपना प्रगट करने के लिये, पर से अत्यंत भिन्न आत्मा कैसा है, उसका स्वरूप भलीभाँति जानना चाहिये।

समय अर्थात् जीव... वह जीव कैसा है, उसका सात बोलों से वर्णन करते हैं:—

(1) जीव उत्पाद-व्यय-ध्रुव की एकतारूप सत्तासहित है

जीव सदा अपने परिणमनस्वभाव में स्थित है, इसलिये वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव की एकतारूप सत्तासहित है। जीव का अस्तित्व ही उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप है, इसलिये नित्यरूप स्थित रहकर अपने परिणामस्वरूप में वह वर्तता है; परिणाम से भिन्न नहीं वर्तता।—ऐसे स्वरूप से जीव का सत्पना है। इसप्रकार सर्वप्रथम ही जीव का सत्पना निश्चित किया।

'सत्' में द्रव्य-पर्याय दोनों का समावेश हो जाता है। परिणमनसहित नित्य स्थित रहनेवाला सत् आत्मा है। ऐसा सत् अपने से ही है, किसी अन्य के साथ उसे संबंध नहीं है;—ऐसे जीवतत्त्व को जो जानता है, वह अपने में एकत्वरूप से ज्ञान और परिणमन करके स्वसमयरूप होता है। यहाँ सर्वज्ञदेव द्वारा साक्षात् देखे हुए जीवतत्त्व का स्वरूप सात बोलों से समझाते हैं। एकांत ध्रुव या एकांत क्षणिक ऐसा कोई सत् तत्त्व नहीं है। सत् उसी को

कहा जाता है जो सदा अपने उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव में स्थित हो। उत्पाद-व्यय और ध्रुव, ऐसे तीन भाववाला जीव का अस्तित्व है; उसमें से एक भी भाव को निकाल देने से अस्तित्व ही नहीं रहता। उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभावरूप से मेरा अस्तित्व है और अपने स्वभाव में स्थित रहकर मैं ही अपने परिणामस्वभाव में स्थित हूँ—ऐसा धर्मी जानता है। नित्य स्थित रहना और पर्यायरूप से परिणमित होना—यह दोनों मेरा स्वभाव ही है; वह किसी अन्य के कारण नहीं। इसप्रकार सर्वप्रथम जीव का स्वाधीन उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप अस्तित्व निश्चित किया। अब, वह अस्तित्व किसप्रकार है, सो बतलाते हैं। क्योंकि अस्तित्व तो जीव के अतिरिक्त अन्य अजीव पदार्थों में भी है, इसलिये जीव के अस्तित्व में क्या विशेषता है, वह बतलाकर जीव को अन्य पदार्थों से भिन्न बतलाया है।

(2) जीव चैतन्यस्वरूप है

जीववस्तु सत् है, वह सत्पना कैसा है ? तो कहते हैं कि चैतन्यरूप से प्रकाशमान आत्मा दर्शन-ज्ञानस्वरूप है। दर्शन और ज्ञान की ज्योति द्वारा जो स्वयं प्रकाशमान है, वह जीव है। ऐसी ज्ञानज्योति में राग नहीं आता, कर्म नहीं आता, शरीर नहीं आता। ज्ञान-दर्शनमय चैतन्यप्रकाशरूप से मेरा अस्तित्व है—ऐसा धर्मी जीव अनुभव करता है। मात्र उत्पाद-व्यय -ध्रुव तो जड़ में भी हैं परंतु जीव के उत्पाद-व्यय-ध्रुव तो चैतन्यभावरूप हैं; आत्मा सदा चैतन्यरूप से प्रकाशमान है।

अहा, चेतनस्वभावरूप से जो प्रकाशित हो, उसी को जीव कहा। जो रागरूप वर्ते, वह जीव—ऐसा नहीं कहा है। राग के बिना भी जीव ज्ञानरूप से प्रकाशित होता है, ज्ञान वह कहीं उपाधि नहीं है, जीव का स्वरूप ही है; विकल्प और राग हो, वह कहीं जीव का स्वरूप नहीं है। चैतन्यता कहीं राग के कारण नहीं है; राग से भिन्न चैतन्यता है, राग के अभाव में भी वह प्रकाशित होती है, इसप्रकार जीव चैतन्यसत्तारूप है।

(3) अनंत धर्मों में फैला हुआ एक धर्मी—ऐसा जीवद्रव्य है

आत्मा सत् है और चैतन्यस्वरूप है; तो क्या उसमें एक ही धर्म है ?—नहीं; चैतन्यभाव में अनंत धर्मों का समावेश होता है; जीव अपनी चेतनासहित अनंत धर्मों में व्याप्त होकर फैला हुआ एक द्रव्य है। गुण और पर्यायें अनंत हैं, उन अनंत धर्मों में एकरूप से आत्मा विद्यमान है, इसलिये धर्मी द्रव्य एक है; अपने अनंत धर्मों में एकसाथ रहनेपर भी वह एक द्रव्यरूप से ही विद्यमान है; अनंत धर्मों में रहने से आत्मा कहीं खंड-खंडरूप नहीं हो गया है, वह एक द्रव्यरूप से ही प्रगट है। स्वयं एक, तथापि अनंत धर्मों में एकसाथ रहने की जिसकी अंचित्य शक्ति है—ऐसा आत्मा है। नित्यता उसका धर्म है और परिणमन भी उसका धर्म है;—इसप्रकार अनंत धर्मस्वरूप एक वस्तु है। अहा! अपने अनंत धर्मों को एकरूप लक्ष में ले, वहाँ आत्मा राग से भिन्न हो जाता है और गुणभेद के विकल्पों से भी पार होकर अभेद आत्मा अनुभव में आता है। 'मुझमें अनंत धर्म हैं'—ऐसा स्वीकार स्वसन्मुख ज्ञान द्वारा ही होता है। अनंत धर्मों को एकसाथ (गुणभेद के विकल्प रहित) लक्ष में-प्रतीति में ले ले, उस ज्ञान की शक्ति कितनी ? राग में अटका हुआ ज्ञान अनंत धर्मों का सच्चा स्वीकार नहीं कर सकता। राग जितना ही मैं हूँ—ऐसी बुद्धि में अटका हुआ ज्ञान, रागरहित अनंत गुणों को स्वीकार कैसे सकेगा ? अनंत जीव, प्रत्येक जीव में अपने अनंत गुण स्वाधीन, यह बात जैनशासन में ही है और इसका स्वीकार करनेवाले जीव को अपूर्व भेदज्ञान होता है।

अरे जीव! तू कैसा है ? तेरा स्वरूप कैसा है ? उसका यह वर्णन वीतरागी संत तुझे सुनाते हैं, अंतर में बारंबार उसके प्रेम और उत्साहपूर्वक तू अपने स्वरूप को पहिचान!

(4) क्रमरूप वर्तती पर्यायें, अक्रमरूप रहते गुण—वह जीव का स्वभाव है।

अनंत गुण-पर्यायें वह जीव का स्वभाव ही है; उनमें गुण एकसाथ

रहनेवाले अक्रम हैं और पर्यायें उत्पाद-व्ययरूप से वर्तती हुई क्रमवर्ती हैं। तीसरे बोल में द्रव्यपना कहकर अनंत धर्मों का उसमें समावेश किया; यहाँ गुण-पर्यायपना कहते हैं। गुण और पर्यायें वे दोनों आत्मा का स्वभाव ही है। क्रमशः होनेवाली पर्यायें भी आत्मा का स्वभाव ही है; अपने स्वभाव से ही वह क्रमवर्ती पर्यायरूप परिणमित होता है और अनंत गुणरूप से स्थित रहता है। एक वस्तु में द्रव्य-गुण-पर्याय, ऐसे भेद का विचार आत्मा का स्वरूप निश्चित करने के लिये होता है, परंतु आत्मा की साक्षात् अनुभूति में द्रव्य-गुण-पर्याय इन तीन का भेद नहीं है, अर्थात् विकल्प नहीं है; वहाँ तो अपनी आनंदमय चैतन्यपरिणतिरूप परिणति होकर उसमें आत्मा अभेदरूप से स्थिर हुआ है; वह स्वसमय है।

आत्मा परिणमित तो सदा होता ही है, परंतु जब वह स्वयं अपने को एकत्वरूप से जानकर परिणमित हो, तब वह सम्यक्त्वादि अपने शुद्धभावरूप परिणमित होकर उसी में स्थित होता है और उसे स्वसमय कहा जाता है। ऐसा स्वसमयपना, वह सुंदर है, उसमें एकत्वरूप से आत्मा शोभता है। आत्मा में द्रव्य-गुण-पर्यायों की, सामान्य-विशेष भावों की अचिंत्य गंभीरता भरी है; उसकी पहिचान करने की यह बात है।

(5) स्व-पर को प्रकाशित करे, ऐसे एकरूप चैतन्यप्रकाशमय जीव है।

आत्मा स्व को, पर को, जड़ को, चेतन को—सर्व पदार्थों को अपनी चैतन्यशक्ति से प्रकाशित करता है; सर्व को जानने पर भी स्वयं तो एक चैतन्यप्रकाशरूप ही रहता है। पर को—जड़ को जानते हुए वह जड़रूप नहीं हो जाता, राग को जानते हुए रागरूप नहीं हो जाता; परंतु जड़ को या राग को जाननेपर भी चैतन्यभाव स्वयं तो एक चैतन्यभावरूप ही रहता है। अनेक पदार्थों को जानने पर भी चेतना अपने एकत्व को नहीं छोड़ती। ऐसे स्व-पर प्रकाशक चैतन्यसामर्थ्यवान पदार्थ, वह जीव है।

चेतना पर से भिन्न है, तथापि भिन्न रहकर भी वह पर को जान लेती है—ऐसी उसकी शक्ति है; तथा वह चेतना स्वयं अपने को भी अपने में तन्मय होकर जानती है। स्व-पर अनेक पदार्थों को जाने, तथापि स्वयं चेतनास्वरूप में ही तन्मय रहने के कारण आत्मा एकरूप ही है; अनेक को जानने से स्वयं अनेकरूप नहीं हो जाता। सर्व को जानते हैं, ऐसे सामर्थ्य के कारण सर्वज्ञ कहलाते हैं; वह सर्वज्ञता आत्मा है, आत्मा स्वयं निश्चय से वैसी सर्वज्ञपर्यायरूप हुआ है; वह भी जीव का स्वभाव है। अनंत स्वभावों से गंभीर ऐसा जीवद्रव्य है। मैं ही ऐसी शक्तिवाला हूँ कि जिसका ज्ञान स्व-पर को जाननेरूप परिणमित होता है और तथापि अपने एकत्व को नहीं छोड़ता—ऐसा विश्वप्रकाशी अद्वितीय चैतन्यदीपक जीव है। पर्याय को-राग को-जड़ को जानना, वह कोई दोष नहीं है, उन्हें जानने से कहीं चैतन्यपर्याय मलिन नहीं हो जाती। सर्व को जानना, वह तो चैतन्य की निर्मलता का सामर्थ्य है, सहज स्वरूप है।—ऐसे अपने जीव को तू जान।

(6) अन्य द्रव्यों से असाधारण ऐसे चैतन्यस्वभावरूप जीव है।

जगत में जीव के अतिरिक्त अन्य अजीव पदार्थ भी हैं—जो कि चेतना रहित हैं; उन सर्व पदार्थों से जीव को अत्यंत भिन्नता जीव के चेतनालक्षण द्वारा निश्चित होती है। चेतनता, वह जीव का असाधारण स्वभाव है। अन्य पाँच द्रव्यों के जो असाधारण-विशेषगुण, वे जीव में नहीं हैं; और जीव का असाधारण चेतनागुण किसी अन्य में नहीं है; इसप्रकार जीव अन्य पाँचों प्रकार के अजीवद्रव्यों से अत्यंत भिन्न है। उसकी पर से अत्यन्त भिन्नता और अपने ज्ञानस्वभाव के साथ एकता है। ऐसे स्वभाव से एकत्व-विभक्तरूप से वह शोभता है; जीव को ऐसे असाधारण चैतन्यस्वरूप से पहिचानने पर राग से भी भिन्न परिणमन होता है।

जीव के सिवा अन्य द्रव्य जगत में हैं अवश्य, जीव उन्हें जानता भी है, परंतु वे अन्य द्रव्य जीव के अस्तित्व में नहीं हैं। जीव अपने ज्ञानादि स्वधर्मों के अस्तित्व में ही हैं। ऐसे अपने भिन्न अस्तित्व को जानकर भेदज्ञान

करनेवाला जीव स्वद्रव्यसन्मुख सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायरूप परिणमित होता है।

(7) जीव चैतन्यस्वभाव से टंकोत्कीर्ण है

इस एक आत्मा के अतिरिक्त अन्य अनंत जीव तथा अनंत अजीव पदार्थ इस जगत में विद्यमान हैं; ऐसे अनंत जीव-अजीव पदार्थों के साथ एकक्षेत्र में स्थित होने पर भी चैतन्यरूप ही रहता है; चैतन्य मिटकर कभी जड़ नहीं होता; इसलिये जीव सदा अपने टंकोत्कीर्ण चैतन्यस्वरूप में विद्यमान है।

अपना ऐसा स्वरूप भूलकर, अनादिकाल से चार गतियों के भयंकर दु:खों में भ्रमण किया, तथापि चैतन्यस्वभाव ज्यों का त्यों रहा है; जीव के ज्ञान-आनंदस्वभाव का एक भी अंश कम नहीं हुआ, टंकोत्कीर्ण ज्यों का त्यों विराजमान है। एक क्षेत्र में रहने पर भी वह पर के साथ एकमेक नहीं हुआ है, तथा पर्याय में विकृति होने पर भी मूल स्वभाव का नाश नहीं हुआ है, स्वभाव अन्यथा नहीं हुआ है। अहा, जीव का स्वभाव तो देखो! ...ऐसे अपने जीव स्वभाव को पहिचानना ही सच्चा करनेयोग्य कार्य है; बाकी संसार में सब असार है।

इसप्रकार जो उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप सत् है, जो चैतन्यज्योति है, जो अपने अनंत धर्मों में विद्यमान है, जो गुण-पर्यायवान है, जो स्व-परप्रकाशक है, जो अन्य द्रव्यों से भिन्न असाधारण चेतनागुणरूप है और जो सदा अपने स्वरूप में टंकोत्कीर्ण स्थित है—ऐसे विशेषणोंवाला जो जीवपदार्थ है, उसी को 'समय' कहा जाता है, क्योंकि वह एकत्वरूप से जानना और परिणमन करना—दोनों क्रियाएँ एकसाथ करता है।

(8) स्वसमय और परसमय—उनमें स्वसमय की सुंदरता।

जीव अर्थात् 'समय' नामक पदार्थ कैसा है, वह सात बोलों से बतलाया। प्रत्येक जीव में जानने और परिणमन करने की दोनों क्रियाएँ

एकसाथ होती हैं; परंतु उनमें दो प्रकार हैं—ज्ञानी अपने चैतन्यस्वरूप आत्मा को ही स्व-रूप जानता है और स्व में ही एकत्वबुद्धि से सम्यग्दर्शनादिरूप परिणमित होकर उसमें स्थिर होता है, इसलिये वह स्वसमय है; और अज्ञानी स्व को भूलकर पर को एकत्वरूप से जानता है तथा मोहादि परभावों में एकत्वरूप परिणमित होकर उसमें स्थिर होता है, इसलिये वह परसमय है। इसप्रकार जीव नामक समय को स्वसमय और परसमय—ऐसे दो प्रकार होते हैं। उन्हें जानकर स्वसमयपना प्रगट करना और परसमयपना छोड़ना; क्योंकि स्वसमयरूप एकत्वरूप से ही आत्मा शोभता है, उसी में आत्मा की सुंदरता है; परसमयपना, वह आत्मा को नहीं शोभता, उसमें तो विसंवाद है, बंधन है।

जीव को स्वसमयपना कब होता है ?—कि जब अपने आत्मस्वरूप की प्रतीति करके स्व-पर का भेदज्ञान करे, तब जीव पर से भिन्न अपने दर्शन-ज्ञानस्वभाव में निश्चल परिणतिरूप से परिणमित होता हुआ उसमें एकत्वरूप से स्थित होता है, तब वह स्वसमय है। अहा, यह भेदज्ञानज्योति तो त्रिलोकप्रकाशक केवलज्ञानदीप को प्रज्वलित करनेवाली है। अहा, जो केवलज्ञान प्रदान करता है, ऐसे भेदज्ञान की शक्ति का क्या कहना! एक ओर अपना ज्ञान-दर्शनमय स्वभाव और दूसरी ओर सर्व परद्रव्य (-देव-गुरु-शास्त्र-तीर्थ-विकल्पादि सब),—इसप्रकार अत्यंत भिन्नता जाने, तब परद्रव्य में एकाग्रता छोड़कर स्वद्रव्य में एकता करे और उसे स्वसमयपना हो। अपने चैतन्यस्वभाव से अधिक जगत के किसी अन्य पदार्थ की या रागादि परभाव की महिमा आये तो वह जीव उस परपदार्थ से छूटकर स्वतत्त्व की ओर उन्मुख नहीं हो सकेगा, उसे सच्चा भेदज्ञान नहीं होगा। यहाँ तो भेदज्ञान करके स्वसमय होकर जो केवलज्ञान की ओर चलने लगा है, उसकी बात है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह आत्मा का स्व है, उसमें स्थित वह

स्वसमय है। जिसे कहीं भी पर में सुखबुद्धि हो, वह जीव पर से भिन्न होकर स्व में स्थित नहीं हो सकता। जो स्व और पर की भिन्नता को नहीं जानता, वह अज्ञानभावरूप परिणमित होता है, उसे सम्यक्त्वादि में प्रवर्तनरूप स्वसमयपना नहीं होता; उसे तो पुद्गलकर्म के प्रदेश में स्थित कहा है। जो चेतना में स्थित नहीं, वह कर्म में ही स्थित है। दो भाग करके बात कही है—जो अपने ज्ञानस्वभाव में स्थित है, उसे कर्म की ओर के किसी भी भाव में एकत्वबुद्धि नहीं रहती; और जिसे पर की ओर के किसी भी भाव में एकत्वबुद्धि है, वह जीव अपने ज्ञानस्वभाव में एकता नहीं कर सकता।

अरे जीव! तू अपने तत्त्व को जानकर, पर से भिन्नता और स्व में एकता कर! ऐसे अपूर्व भेदज्ञान से तुझे अल्पकाल में केवलज्ञान एवं सिद्धसुख की प्राप्ति होगी। जिसने सिद्धभगवान को आत्मा में स्थापित किया, उसे स्व-पर का ऐसा भेदज्ञान होगा ही। सिद्ध में कर्म का या राग का किंचित् संबंध नहीं है, उसीप्रकार इस आत्मा का स्वभाव भी कर्म और रागरहित है; ऐसे अपने आत्मा को जानकर स्वयं अपने में एकत्वरूप से परिणमन करने पर आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित हो जाता है। जिस रूप परिणमित हुआ, उसी में वह स्थित हुआ; सम्यक्त्वादि स्वभावरूप से परिणमित होकर उसमें स्थित हुआ, वह स्वसमय हुआ। वह आत्मा स्वयं अपने स्वभाव को ही स्व-रूप से जानता है और उसी में एकत्वरूप से परिणमन करता है।—ऐसी दशा भेदज्ञान द्वारा ही होती है। इसलिये जीव का यथार्थ स्वरूप जानकर पर से भिन्नता की प्रतीति करना चाहिये।—ऐसा भेदज्ञान, वह केवलज्ञानविद्या को उत्पन्न करता है।

जगत के सर्व पदार्थ स्वयं अपने गुण-पर्याय में ही विद्यमान हैं। जीव वस्तु भी अपनी पर्याय में रहती हैं। जो अपनी निर्मल पर्याय में वर्तता है,

वह स्वसमय है; जो स्व-पर को एक मानता हुआ अज्ञान पर्याय में वर्तता है, वह परसमय है। चौथे गुणस्थान में सम्यक्त्वादि जितनी शुद्ध अनुभूति वर्तती है, उसमें स्थित आत्मा स्वसमय है। अहा! आत्मा अनुभूति में आया, उसमें तो अनंत गुणों का समावेश हो जाता है। स्वसन्मुख अनुभूति में पूर्ण आत्मा समा जाता है। स्व-पर का भेदज्ञान करके, शुद्धपरिणति के साथ एकत्वरूप परिणमित आत्मा, वह स्वसमय है। जैसा ज्ञानस्वभाव है, वैसा परिणमन हुआ, उसमें तो आत्मा शोभता है, वह तो आत्मा का स्वरूप है। परंतु ज्ञानस्वभाव से विरुद्ध ऐसे मोहादि परभावरूप परिणमित होना, वह परसमयपना है, उसमें आत्मा की शोभा नहीं है।

एकत्वपने में आत्मा की शोभा है, परंतु संसारी जीवों को उस एकत्व की अनुभूति दुर्लभ है; दुर्लभ होने पर भी ज्ञान की यथार्थ उपासना द्वारा उसकी प्राप्ति हो सकती है। इस समयसार में आचार्यदेव ने आत्मा के अद्‌भुत वैभव से वह एकत्वस्वरूप बतलाकर उसका स्वानुभव कराया है। शुद्ध आत्मा की स्वानुभूति महा आनंदमय है और वही इस समयसार के अभ्यास का फल है।

त्रैकालिक भूतार्थस्वभाव के सन्मुख होकर उसका स्वीकार करने से आत्मा स्वयं अपने में एकत्व से सम्यग्दर्शनादिरूप परिणमित होता है। ज्ञानस्वभाव में तन्मयरूप ज्ञानभाव से परिणमन करनेवाला आत्मा, वह सच्चा आत्मा है और क्रोधादि परभावों में तन्मय होकर अज्ञानभावरूप से परिणमित आत्मा, वह अनात्मा है, उसे आत्मभाव की प्राप्ति नहीं हुई है।—इसप्रकार जीव को एक स्वसमयपना और दूसरा परसमयपना—ऐसी दो अवस्थाएँ हैं; उनमें स्वसमयपना, वह सुंदर है। अनादि से परसमयपना है, वह छूटकर स्वसमयपना हो—ऐसी बात इस समयसार में बतलायी है... उसे हे भव्य जीवो! तुम बहुमानपूर्वक सुनकर लक्ष में लेना।●

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 27, अंक 9

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

पाप के नाम

आकाश एक अरूपी असंख्यातप्रदेशी द्रव्य है, उसके भिन्न-भिन्न नाम इस प्रकार है-

आकाश के नाम

खं विहाय अंबर गगन, अंतरिच्छ जगधाम।
व्योम वियत नभ मेघपथ, ये अकाश के नाम ॥38॥

अर्थः- खं, विहाय, अम्बर, गगन, अन्तरिक्ष, जगधाम, व्योम, वियत, नभ, मेघपथ- ये आकाश के नाम हैं ॥38॥

काव्य - 38 पर प्रवचन

'खं' आकाश को खं कहते हैं। इसकारण ही आकाश में गमन करनेवाले पक्षी, सूर्य आदि को खग कहते हैं, परन्तु एक कविता में आता है, उसतरह आकाश में जो पक्षी के पग शोधते हैं और पानी में मछली के पैर खोजते हैं, वे मूर्ख हैं; उसीप्रकार राग-द्वेष में आत्मा को खोजे, वह मूर्ख है।

'विहाय, अम्बर' ये भी आकाश के नाम हैं। दिगम्बर शब्द में दिशा जिसका अम्बर है, वह दिगम्बर है- ऐसा अर्थ है। यहाँ आकाश को अम्बर कहा है। आकाश को गगन भी कहते हैं।

'अंतरिच्छ'- जो किसी के आधार बिना रहता है, वह सर्वव्यापी आकाश है। **'जगधाम'**- व्यवहार से सम्पूर्ण दुनिया जिसमें बसती है, उसको जगधाम-आकाश कहते हैं। **व्योम, वियत** अर्थात् विस्तार, **नभ** और **मेघपथ** -ये भी आकाश के नाम हैं। आकाश एक अरूपी महापदार्थ है, उसे भगवान ने देखा है, वह कोई कल्पना नहीं है ॥38॥

काल के नाम

जम कृतांत अंतक त्रिदस, आवर्ती मृतथान।
प्रानहरन आदिततनय, काल नाम परवान ॥39॥

अर्थः– यम, कृतांत, अन्तक, त्रिदश, आवर्ती, मुत्युस्थान, प्राणहरण, आदित्यतनय– ये काल के नाम हैं ॥39 ॥

काव्य – 39 पर प्रवचन

जम– काल को ही यम कहते हैं। जिससमय देह छूटने का काल है, उससमय को ही यम कहते हैं, उसके बदले लोग यम अर्थात् जीव को लेने आनेवाला मानते हैं। ऐसा कोई (यम)जीव को लेने नहीं आता। **'कृतांत'** अर्थात् कार्य को पूरा करनेवाला काल है। अंतक अर्थात् अन्त करनेवाला; देह की स्थिति का अन्त आता है, उसको काल कहते हैं।

त्रिदस– काल को त्रिदश भी कहते हैं। **आवर्ती** अर्थात् परावर्तन, जड़ और चैतन्य के पलटने की पर्याय को भी काल कहते हैं। भगवान ने कहा है कि प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव से है, पर के द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव से नहीं। द्रव्य अर्थात् गुण–पर्याय का पिण्ड, क्षेत्र अर्थात् अवगाहन, काल अर्थात् दशा और भाव अर्थात् शक्ति।

सप्तभंगी के पहले बोल में यह आ जाता है कि प्रत्येक द्रव्य की अपने स्वचतुष्ट्य से अस्ति है और परचतुष्ट्य से नास्ति है। तो इसप्रकार अपनी पर्याय का पलटना यही काल है, उसे यहाँ आवर्त शब्द से कहा है।

मृतथान– मरने के स्थान को काल कहते हैं। देह में जीव के रहने की स्थिति पूर्ण हो, उससमय को काल कहा जाता है। कोई यमराज इस अरूपी आत्मा को पकड़ ही नहीं सकता तो, ले तो कहाँ जावे ?

प्रानहरन– पाँच इन्द्रियाँ, मन–वचन–काय, आयु और स्वासोच्छवास– ये दश प्राण हैं। उनकी स्थिति पूर्ण हो जाये, अतः उसे काल या प्राण हरण कहते हैं।

आदित्यतनय– आदित्य अर्थात् सूर्य उसकी गति का माप देने में काल निमित्त है, अतः उसे सूर्य का पुत्र कहते हैं। इसप्रकार काल के नाम कहे।

अब कवि यह बताते हैं कि पुण्य कितने नामों से पहचाना जाता है–

श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़

कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन

श्री दिगम्बर जैन दिव्यदेशना ट्रस्ट, दिल्ली एवं

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, दिल्ली

के संयुक्त तत्त्वावधान में

॥ पणमामि वड्ढमाणं ॥

मङ्गल मोक्ष-प्रकाशोत्सव

सत्धर्म प्रेमी बन्धुवर !

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी तीर्थधाम मङ्गलायतन के उन्मुक्त वैदेही वातावरण में, **पणमामि वड्ढमाणं, मङ्गल मोक्ष-प्रकाशोत्सव** सिद्धान्त एवं जिनवरों की भक्तिपूर्वक सम्पन्न होगा।

इस शिक्षण शिविर में देश के शीर्षस्थ आध्यात्मिक विद्वानों का लाभ ऑनलाईन प्राप्त होगा।

दैनिक कार्यक्रम

श्री तीर्थंकर महावीर पंच-कल्याणक विधान	प्रातः 6:45 से 8:45 तक
पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन	प्रातः 9:15 से 9:45 तक
विशिष्ट विद्वानों द्वारा सी.डी. प्रवचन विवेचना	प्रातः 9:45 से 10:00 तक
शास्त्र स्वाध्याय -श्री मोक्षमार्गप्रकाशकजी	प्रातः 10:00 से 10:45 तक
चैतन्य-स्तवन	प्रातः 10:45 से 11:00 तक
आत्म-कीर्तन	दोपहर 1:45 से 2:00 तक
मोक्षमार्ग-प्रकाश-ज्ञान गोष्ठी	दोपहर 2:00 से 4:00 तक
मंगलार्थी स्वाध्याय : पंच-कल्याणकोत्सव	सायं 6:00 से 6:40तक
श्री पंच-महागुरु भक्ति	सायं 6:40 से 7:30तक
तीर्थंकर वर्द्धमान का सर्वोदय तीर्थ	सायं 7:30 से 8:15 तक
लघु समयसार-श्री छहढालाजी गोष्ठी	सायं 8:15 से 9:30तक
भव्य-प्रमोद	सायं 9:30 से 10:15 तक

पत्र व्यवहार का पता— तीर्थधाम मङ्गलायतन अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216 (हाथरस)

सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)

Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

पुण्य के नाम

पुन्य सुकृत ऊरधवदन, अकररोग शुभकर्म।
सुखदायक संसारफल, भाग बहिर्मुख धर्म ॥40॥

अर्थः– पुण्य, सुकृत, ऊर्ध्ववदन, अकररोग, शुभकर्म, सुखदायक, संसारफल, भाग्य, बहिर्मुख, धर्म– ये पुण्य के नाम है। ।40।।

काव्य – 40 पर प्रवचन

पुण्य– शुभभाव को पुण्य कहते हैं और जो शुभकर्म बँधता है, उसे भी पुण्य कहते हैं। सवेरे के प्रवचन में कहा था न! लक्ष्मी खर्च करने से कम नहीं होती, पुण्य क्षीण होने से लक्ष्मी खत्म हो जाती है। पूर्व के जो पुण्य के जड़ परमाणु पड़े हैं, उनकी स्थिति पूरी हो जाये तो लक्ष्मी बिना उपयोग किये ही नष्ट हो जाती है और पुण्य हो तो लक्ष्मी खर्च करने से भी खत्म नहीं होती।

सुकृत– अच्छे कार्य को सुकृत कहते हैं। पापकार्य की अपेक्षा से जो अच्छे कार्य – दया, दान व्रत, भक्ति, यात्रा आदि के भाव, वे पुण्य हैं; किन्तु धर्म नहीं हैं।

उरधवदन– पुण्य से जीव ऊँचे क्षेत्र में आता है। स्वर्ग में जाये, सेठ हो– यह सब पुण्य के फल में होता हैं, अतः (पुण्य को) उर्ध्ववदन कहा है। यह परमार्थ की बात नहीं है, व्यवहार की बात है न! इन्दौर के सरसेठ हुकमचन्दजी बाजार में निकलें; वहाँ तो व्यापारी दुकान में से नीचे उतर आवें, खमा.. खमा.. हो। इनके वस्त्रादि सब ऊँची जाति के, यहाँ भी एकबार आ गये हैं। उनके गले मे सत्रह लाख का हार था। हीरे का हार अर्थात् नीले पत्थर थे। कहा कि यह तो शेर सवाशेर वजन उठाने का है!

दुनियाँ में पुण्य को ऊँचा मानने में आता है, अतः उसको उर्ध्ववदन कहा है। सेठाई मिले या अच्छा वेतन मिले, बाहर की अनुकुलता हो, इसलिए ऊँचे कहलाते हैं।

अकररोग– रोग को नहीं करे वह पुण्य है। शुभकर्म शुभभाव को पुण्य

कहते हैं, वैसे ही साता वेदनीय बँधे, उसे भी पुण्य-शुभकर्म कहते हैं। पुण्य के फल में लक्ष्मी ढूँढने न जाये तो भी सामने से आती है, वह शुभकर्म है; धर्म नहीं। धूल है, पुण्य के फल में धूल मिलती है; पर आत्मा प्राप्त नहीं होता।

सुखदायक- दुनिया में पुण्य सुखदायक गिना जाता है। लोग ऐसा कहते हैं कि पैसा है, हमारे तो बादशाही है; परन्तु इसमें वास्तविक सुख नहीं है।

भाग्य- पुण्य कहो या भाग्य कहो- एक ही है। हमारे भाग्य में था, वह मिला- ऐसा कहते हैं न! किन्तु भाग्य यह कोई नई वस्तु नहीं है। ये तो निगोद के जीव को भी होता है। निगोद यानी एकेन्द्रिय जीव को भी शुभभाव होता है। आलू की एक राई जितनी कणी में असंख्य तो औदारिक शरीर हैं और एक-एक शरीर में अभी तक जितने सिद्ध हुए, उनसे अनन्तगुने जीव हैं; उनके पास मन, वचन भी नहीं; फिर भी वे क्षण में शुभ और क्षण में अशुभभाव करते हैं, ऐसा भगवान का वचन है। तो यह शुभकर्म वहाँ भी है, परन्तु वह कोई धर्म का कारण नहीं है।

बहिर्मुख- पुण्य बहिर्मुखभाव है, अन्तर्मुख भाव नहीं। अन्तर्मुख भाव तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। यह तो पर के लक्ष्य से हुई राग की मन्दतारूप बहिर्मुखभाव है।

धर्म- बंध के कारण ऐसे पुण्यभाव को व्यवहार धर्म कहा जाता है, परन्तु वह परमार्थ धर्म नहीं है।

पाप के नाम

पाप अधोमुख एन अघ, कंप रोग दुखधाम।
कलिल कलुस किल्विस दुरित, असुभ करमके नाम ॥41॥

अर्थः- पाप, अधोमुख, एन, अघ, कंप, रोग, दुखधाम, कलिल, कलुष, किल्विष और दुरित- ये अशुभ कर्म के नाम है। ।41।।

काव्य - 41 पर प्रवचन

पाप- हिंसा, झूठ, चोरी आदि भाव को पाप कहते हैं और उसके निमित्त से जो जड़ परमाणु बँधते हैं, उन्हें द्रव्यपाप कहते हैं।

अधोमुख– पाप करनेवाला अधोमुख-नीचे जाता है। तीव्र पाप करनेवाला नरक में जाता है। बड़े-बड़े राजा शिकारादि सप्तव्यसनों का सेवन करते हैं, वे पाप के फल में नीचे जाते हैं, अत: पाप तो अधोमुख है। पाप को 'एन' भी कहते हैं। पूर्व के पुण्य से सब अनुकुल भोग प्राप्त होते हैं, परन्तु उन्हें भोगने का भाव पाप है।

अघ– पाप को अघ अर्थात् दोष कहते हैं। **'कम्प'** यानी अस्थिरता, पाप में हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, मान, बढ़ाई आदि बहुत अस्थिरभाव हैं, वे पाप के कम्प है।

रोग– पाप को रोग कहते हैं तथा रोग भी पाप से ही आते हैं। असाता का उदय हो तो शरीर की कितनी ही सार-सँभाल करो, फिर भी रोग आये बिना नहीं रहता। अत: पाप को ही रोग कहा है। **दु:खधाम**– पाप, वह दु:ख का धाम है।

श्रोता– इस पाप से ही पैसा मिलाता है, उसे दु:खदायक कैसे कहते हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री– पैसे पाप भाव से नहीं मिलते। पैसे तो पूर्व के पुण्य के फल से मिलते है। पापभाव से तो पापकर्म बँधता है। कमाने का भाव, खाने का भाव, वकालात का भाव - ये सब पापभाव हैं, दु:खधाम हैं। श्रीमद् में आता है न! 'सुखधाम अनंत सुसंत चही, दिन-रात रहे तद्ध्यान मही...! पाप तो पाप के धाम में ले जानेवाला दु:खधाम है और पाप परिणाम स्वयं ही दु:खधाम है और दु:ख धाम में ले जाते हैं

कलिल– अर्थात् मेल है। पाप तो मेल है। **'कलुस'** पाप तो क्लेशरूप दु:खदायक मलिन परिणाम है। किल्विस -हल्के देव को किल्विस कहते हैं। को किल्विष कहते हैं।

दुरित– भौंडी रीत, खोटी दीत। पाप, वह झूठी रीत है।

अशुभ– पाप को अशुभ भी कहते हैं।

इस प्रकार पाप के नाम कहे। **क्रमश:**

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव
श्री प्रभाचन्द्र (चतुर्थ)

जिनधर्म में प्रभाचन्द्र नामक अनेक आचार्य हुए हैं, जैसे—

(1) नंदिसंघ बलात्कारगण (नंदिसंघ की एक शाखा का नाम) की पट्टावलियों के अनुसार आचार्यदेव प्रभाचन्द्रजी (प्रथम) आचार्य लोकचन्द्र के शिष्य व आचार्य नेमिचन्द्र के गुरु थे। आपका काल ई. स. 531 से 556के बीच माना जाता है।

(2) जिन्होंने गृद्धपिच्छ उमास्वामी का अनुसरण करके एक द्वितीय तत्त्वार्थसूत्र बनाया। यह आचार्य प्रभाचन्द्रजी (द्वितीय) भट्ट अकलंक के परवर्ती होने से आपका काल ईसु की सातवीं शताब्दी उत्तरार्ध माना जाता है। आपका दूसरा नाम 'बृहद्प्रभाचन्द्र' के रूप में भी प्रसिद्ध है।

(3) राष्ट्रकूट के नरेन्द्र गोविन्द के ताम्रपत्र अनुसार आचार्यदेव प्रभाचन्द्रजी (तृतीय) तोरणाचार्य व पद्मनंदि के शिष्य थे। आपका काल लगभग ई. सं. 797 माना जाता है।

(4) आचार्यदेव प्रभाचन्द्रजी (चतुर्थ) महापुराण के कर्ता आचार्य जिनसेनजी (द्वितीय) के पूर्ववर्ती कुमारसेन के शिष्य थे। आपने न्यायग्रंथ 'चंद्रोदय' की रचना की थी। आपका काल ई. स. 950-1020 होना निश्चित होता है। आप जिनसेनजी (द्वितीय के) सम-समयवर्ती भी होंगे।

आपकी गुरु-शिष्य परंपरा से ज्ञात होता है, कि आप दक्षिण राज्य के थे, क्योंकि ऐसी गुरु-शिष्य परंपरा दक्षिण में ही होती है। वहाँ से आप अपने जीवन के अंतिम वर्षों में उत्तर में 'धारा' नगरी की ओर विहार कर पधारे होंगे। वहीं आपको आचार्यदेव माणिक्यनन्दिजीव का संपर्क होने से ही आपने स्वयं को उनका साक्षात् शिष्यत्व (शिक्षा-शिष्यत्व) प्रकट किया है। इससे संभव है, कि आपने आचार्य माणिक्यनंदिजी से न्याय का अभ्यास किया व उन्हीं के जीवनकाल में ही आचार्य माणिक्यनंदिजी के 'परीक्षा-मुख' की 12000 श्लोक प्रमाण 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' नामक टीका की रचना की थी।

आप नंदिसंघ देशीयगण गोलाचार्य आम्नाय में पद्मनंदि सैद्धान्तिक के शिष्य थे। इतना ही नहीं आप भगवान आचार्य कुलभूषण के भी सधर्मा थे व शिलालेखों के आधार से आप कुलभूषण के गुरु भी थे।

आपके गुरु पद्मनंदि सैद्धांतिक थे तथा आपने अपने गुरु के रूप में 'चतुर्मुख गुरु' का भी स्मरण किया है। इस पर से अनुमान है कि 'चतुर्मुख गुरु' आपके या तो गुरुभाई हैं या द्वितीय गुरु हों।

माणिक्यनंदि आचार्य आपके शिक्षागुरु थे। आप धारानगरी के राजा भोज द्वारा सम्मानित व पूजित हुए थे। आप स्वयं राजमान्य राजर्षि थे।

आप 'पंडित' उपमा से भी अलंकृत थे। इतना ही नहीं, 'जैनेन्द्र व्याकरण' पर रचित आपकी रचना 'जैनेन्द्रन्यास-शब्दाम्भोज भास्कर' के कारण आपको 'शब्दाब्ज दिनमणि' की संज्ञा दी गई थी। आप महान तार्किक होने से व तार्किक ग्रंथों की रचना करने से 'प्रथित तार्किक' की उपमा से भी अलंकृत थे। इतना ही नहीं, आप वैयाकरणी भी थे।

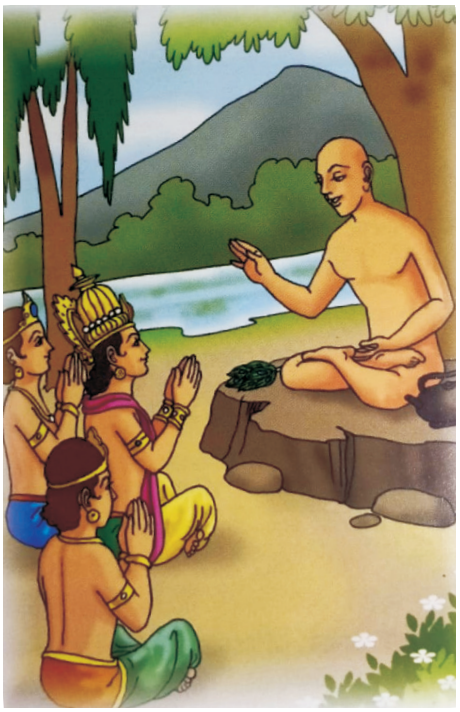

आपने जो शब्दों की व्युत्पत्तियाँ खोली हैं, वे अपने में अद्‌भुत होने से आप 'असाधारण व्युत्पन्न पुरुष' भी थे। आपकी लेखनी के आधार से यह भी ज्ञात होता है कि आपको न्याय, सिद्धांत, अध्यात्म, चरणानुयोग, प्रथमानुयोग दर्शन आदि विषयों पर संपूर्ण अधिकार प्राप्त था। आप जैनदर्शन व अन्य दर्शनों के सैद्धांतिक फर्क को गहराई से जानते थे। अन्य दर्शनों में वेद, उपनिषद, स्मृति, सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय, मीमांसक, बौद्ध,

चार्वाक आदि सभी भारतीय दर्शनों पर आपका अच्छा अध्ययन था। इस भाँति स्वयं ज्ञान-ध्यान में लवलीन रहते होने पर भी असाधारण क्षयोपशम के धनी थे—यह अति स्पष्ट है। आपने जो, जिनधर्म को शास्त्र प्रदान किये हैं, उनसे प्रतीत होता है कि आपका आयुष्य बड़ा होना चाहिए। आत्मज्ञानमय विशाल क्षयोपशम व वैराग्य के धनी हो जाने से आपने छोटी उम्र में ही भगवती जिनदीक्षा व आचार्य पदवी धारण की हो - ऐसा अनुमान है।

आप द्वारा रचित 'प्रमेयकमलमार्तंड' व 'न्याय कुमुदचंद्र' जैन न्यायशास्त्र के अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। इन ग्रंथ के विषयवस्तु को देखते हुए स्पष्ट होता है कि क्रमशः 'प्रमेयरूपी कमलों को उद्भासित करने के लिए आप मार्तण्ड-सूर्य' समान होने से 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' नाम यथार्थ है; व 'न्यायरूपी कुमुदों को प्रस्फुरित करने के लिए चंद्रमा सदृश' होने से 'न्याय कुमुदचंद्र' नाम भी यथार्थ हैं।

जो कुछ भी हो, आपके लिखित शास्त्रों की शैली, भाषा, शिलालेखों से विद्वान वर्ग को निश्चय है कि आप निम्न शास्त्रों के रचयिता थे।

(1) प्रमेयकमलमार्तण्ड : परीक्षामुख-व्याख्या, (2) न्याय कुमुदचंद्रः लघीयस्त्रय व्याख्या, (3) तत्त्वार्थवृत्ति पद विवरण : सर्वार्थसिद्धि व्याख्या, (4) शकटायनन्यास : शकटायन व्याकरण व्याख्या, (5) शब्दाम्भोजभास्कर : जैनेन्द्रव्याकरण व्याख्या, (6) प्रवचनसार सरोज भास्कर : प्रवचनसार व्याख्या, (7) गद्यकथाकोष : स्वतंत्र रचना, (8) रत्नकरंडक श्रावकाचार-टीका, (9) समाधितंत्र टीका, (10) आत्मानुशासन टीका, (11) क्रियाकलाप टीका, (12) महापुराण-टिप्पण, (13) लघुद्रव्यसंग्रह वृत्ति, (14) पंचास्तिकाय प्रदीप, (15) समयसार टीका, (16) चंद्रोदय भी आपकी रचना प्रतीत होती है।

आचार्यदेव रचित रचनाओं तथा उत्तरवर्ती रचनाओं के आधार पर काफी उहापोह पश्चात् इतिहासकार विद्वानवर्ग ने आपका समय ई. स. 950 से 1020 माना है।

ऐसे आत्मज्ञान सह अनहद वैराग्य व ज्ञान-ध्यान में प्रचुर आचार्य प्रभाचंद्रदेव (चतुर्थ) को कोटि कोटि वंदना।●

सर्वज्ञकथित वस्तुस्वरूप समझने की सुगम पद्धति

[पंचास्तिकाय गाथा 8 के प्रवचन से]

प्रत्येक द्रव्य में नित्य-अनित्यरूप अनेक धर्म पाये जाते हैं। वस्तु का स्वरूप-अस्तित्व सदा स्व से है, पर से नहीं है—ऐसी स्वभावदृष्टि सहित स्वीकार करके सभी द्रव्यों में स्वअस्तित्व-सत्तागुण की अपेक्षा संग्रहनय से देखने पर महासत्ता एक है, उसमें सबका स्वरूप अस्तित्व पृथक्-पृथक् ही है। महासत्ता द्रव्य का एक विशेषण है, वह कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। महासत्ता एक होने पर उसकी प्रतिपक्ष-अवांतर सत्ता अनेक हैं। यहाँ स्वरूप का अर्थ—स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल और स्वभाव से प्रत्येक वस्तु का स्वरूप स्व-अस्तित्व से है, पर से नहीं है, पररूप में नहीं है, ऐसा जानना।

द्रव्य सत्, गुण सत्, और प्रत्येक समय नई-नई होनेवाली पर्याय भी सत् है; सामान्य द्रव्य और गुण है, वह नित्य शक्तिरूप होने से द्रव्यार्थिकनय का विषय है और पर्याय, वह उत्पाद-व्ययरूप अनित्य क्षणिक व्यक्ति होने से पर्यायार्थिकनय का विषय है। उसमें कारण-कार्य की सूक्ष्मता है। पर्याय के कारण से पर्याय है, ध्रुव के कारण से ध्रुव है। किंतु ऐसा नहीं है कि यह है तो दूसरे का अस्तित्व है।

प्रत्येक चेतन द्रव्य के चतुष्टय (द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) सदा अरूपी होने से उसकी उत्पाद-व्ययरूप पर्यायें (-गुण की क्रिया) सदा अरूपी हैं, अतीन्द्रिय ग्राह्य हैं और उसके सप्रतिपक्ष पुद्गलद्रव्यों के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप चतुष्टय सदैव रूपी होने से (जीव के रूपवाला न होने से) सदा रूपी है; छह द्रव्यों में एक पुद्गलद्रव्य रूपी है, शेष द्रव्य अरूपी हैं।

प्रत्येक जीव-अजीव अपने से ही स्वद्रव्य-गुण-पर्याय में एक-अनेक और नित्य-अनित्यरूप से हैं। ऐसा होना पर के कारण नहीं है, न पूर्व पर्याय के कारण वर्तमान में है। आत्मा का ज्ञानगुण भी नित्य परिणामी है, अतः निरंतर ज्ञान की पर्याय ज्ञान से है, श्रद्धा गुण की पर्याय श्रद्धा से, सुखादि गुण की पर्यायें सब अपने-अपने अनुरूप अपने से हैं। ऐसा नहीं है कि पर के

द्वारा उनका अस्तित्व है। इन कथनों का सार तो यह है कि पर से पृथक्ता और अपने ज्ञानानंदमय स्वरूप से अभिन्नता-पूर्णता है; उसे जानकर पर में कर्तृत्व-ममत्व माननेरूप अथवा ज्ञातापन की अरुचि, राग करने की रुचिरूपी मिथ्यात्व छोड़ना चाहिये। और वह मिथ्यात्वरूपी महापाप छोड़ने के लिये सर्वप्रथम प्रत्येक वस्तु स्वतंत्र स्व से है, पर से नहीं है—ऐसा स्पष्ट भावभासनरूप अनुभव करे तो स्वाश्रयमय अपूर्वदृष्टि अर्थात् सम्यग्दर्शन होता है।

भगवान आत्मा अपनी चैतन्यप्रभुता से सदा परिपूर्ण है, अखंड है, इसप्रकार अंतरदृष्टि होते श्रद्धा-ज्ञानादिक गुण की पर्याय सम्यक् हुई, यह नियम है, किंतु ऐसा नहीं है कि सम्यग्दर्शन पर्याय प्रगट हुई; इसलिये सम्यग्ज्ञान पर्याय प्रगट हुई, किंतु स्वद्रव्य का आश्रय होते ही एकसाथ अनंतगुणों की अनंतपर्यायें स्वाश्रय के अनुसार परिणमित होती हैं।

सब पर्यायें अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार अपनी योग्यता से हैं, पर के कारण नहीं हैं, ऐसा प्रथम स्वीकार करे तो निमित्त के ज्ञान को व्यवहारज्ञान कहा जाता है। उपादान के लक्ष्य सहित निमित्त का ज्ञान कराने के लिये निमित्त की मुख्यता से कथन होता है किंतु ऐसा कभी भी नहीं है कि निमित्त की मुख्यता से किसी का काम होता हो; अतः निमित्त होने पर भी निमित्त से कार्य नहीं हुआ, कार्य तो उपादान से ही होता है, यह नियम है। पर से कार्य हुआ—ऐसा कथन उपचार-व्यवहारनय का है। निमित्त, उपादानकारण की प्रसिद्धि करता है। कोई जीव व्यवहार कथन को निश्चय के अर्थ में मान ले तो वह स्वतंत्र सत् का नाश करनेवाला अर्थात् कुदृष्टि है।

सर्वज्ञ भगवान ने अपने रागरहित ज्ञान में शब्द, अर्थ और ज्ञान का अस्तित्व स्पष्ट जाना है, प्रत्येक का अस्तित्व अपने से है, पर से नहीं। ऐसा नहीं है कि केवलज्ञान के कारण दिव्यध्वनि है। प्रत्येक वस्तु के कार्यकाल में उत्पाद-व्यय-ध्रुव का अस्तित्व अपनी शक्ति से है, अन्य तो निमित्तमात्र हैं। सबकी स्वतंत्रता समझे बिना, स्वसन्मुखदृष्टि किये बिना, उसके माने

हुए व्रत, तप, जप, दया, दानादिक के शुभभाव व्यवहारसाधन भी नहीं कहलाते।

ऐसी भी पराधीनता नहीं है कि ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ज्ञान की पर्याय हुई है। ऐसा भी नहीं है—कि जड़कर्म में कुछ हुआ, इसलिये ज्ञान में हीनाधिकता हुई है। जहाँ निमित्त से व्यवहार कथन हो, वहाँ उपादान-वस्तु की योग्यता कैसी है, यह बतलाना है। ऐसा नहीं है कि वाराणसी गया तो वह बड़ा पंडित हुआ, काशी क्षेत्र से ज्ञान नहीं हुआ, ज्ञान तो ज्ञान से हुआ है। पूर्व पर्याय से, जड़कर्म से, राग से, वाणी से या गुरु से ज्ञान नहीं हुआ है, निमित्त तो निमित्तमात्र हैं, दूर ही हैं। एक द्रव्य में दूसरे का प्रवेश नहीं है। ऐसा नहीं है कि शिक्षक होशियार होने से शिष्य को ज्ञान हुआ। पर से कुछ नहीं आता; जैसे पत्थर में मीठापन नहीं है, उसे कौन दे? और शक्कर में मीठापन है तो उसे कौन देता है? आत्मा वाणी का कर्ता नहीं प्रेरक भी नहीं है; वाणी की अवस्था पुद्गल परमाणु से हुई है, ज्ञान की अवस्था अपनी योग्यता से ज्ञान के कारण हुई।

आत्मा भी नित्य-अनित्य स्वभाववाला सामान्य-विशेष धर्म सहित है। उसमें नय-विभाग द्वारा गौण-मुख्य करके अपना नित्य चिदानंदघन पूर्ण है, वह निश्चय परमात्मा है, जो आश्रय करने के अर्थ में उपादेय है। अंदर से स्वाश्रय के द्वारा निर्मल पर्याय प्रगट होती है, वह प्रगट करने के अर्थ में उपादेय है, शेष सब जानने के अर्थ में उपादेय है। एक समय में तीन अंश हैं—उत्पाद-उत्पाद से है, व्यय, व्यय से है, ध्रुव, ध्रौव्यत्व से है। ऐसा नहीं है कि अनित्य पर्यायें हैं, इसलिये ध्रुव है। एक पर्याय दूसरी पर्याय से नहीं है। यहाँ लक्षणदृष्टि से सूक्ष्म तत्त्वज्ञान का कथन है, सूक्ष्मता से स्वतंत्र वस्तु समझने से भावभासनरूप स्पष्टज्ञान-पक्का ज्ञान होता है।

प्रश्न—यदि ऐसा माना जाये कि रागादि विकार को जीव करता है, तो उसे स्व से सत् मानने से विकार वह जीव का स्वभाव हो जायेगा; अतः रागादि पर के कारण होता है, ऐसा माना जाये तो?

उत्तर—नहीं, क्योंकि विकारी अशुद्धदशा जीव की अनित्य पर्याय का स्वभाव है, अशुद्ध निश्चयनय से वह जीव का स्वतत्त्व है; पंचास्तिकाय गाथा 6 में कहा है कि अशुद्धत्व में भी कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण छहों कारक स्वतंत्र हैं। अपनी पर्याय में चारित्रगुण की अशुद्ध उपादानरूप रागादि पर्याय स्वतंत्र है, उसे निश्चय से-स्व से सापेक्ष और पर से निरपेक्ष-अहेतुक माने तो व्यवहार से परसापेक्ष कहा जाता है।

ऐसा नहीं है कि जीव में दर्शन-ज्ञानपर्याय है, इसलिये रागपर्याय है। ज्ञानांश-रागांश एक साथ एक काल में अपनी-अपनी स्वतंत्र योग्यता से ही हैं, किंतु ऐसा नहीं है कि निमित्त है तो राग है, ज्ञान है तो राग है या राग है तो ज्ञान है। ज्ञान के कारण ज्ञान है, राग के कारण राग है, और देहादि पुद्गल अथवा जीव में जो क्षेत्रांतररूप क्रिया दिखाई देती है, वह भी स्वतंत्र अपनी-अपनी क्रियावतीशक्ति के कारण हैं। उससे विरुद्ध मानना छह काय की हिंसा है।

संयोगदृष्टिवान जीव स्वाश्रयज्ञान का तिरस्कार करते हैं। राग की कर्तृत्वबुद्धि होने से रागादि संयोगीभाव की रुचि और महिमा करते हैं। उसे कभी अंतर्मुख स्वतत्त्व की महिमा आती नहीं। संयोग की ओर से देखनेवाला या औदयिकभाव के भरोसे देखनेवाला ज्ञानी की पहिचान नहीं कर सकता, गृहस्थदशा देखकर ज्ञानी का और ज्ञान का तिरस्कार करते हैं, तब सम्यग्दृष्टि जीव तो नित्य ज्ञानचेतना के स्वामित्वभाव से ही परिणमन करनेवाला होने से किसी भी राग को करनेयोग्य नहीं मानता। चारित्रदोष जितना राग हुआ, उस समय भी ज्ञानी की दृष्टि रागादि में नहीं है, देहादि, रागादि से भिन्न मैं ज्ञान हूँ, अत: वह सर्वत्र ज्ञान की ही प्रसिद्धि करता हुआ अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा को जानता है। राग होने पर राग की रुचि नहीं है। राग, राग का है। ज्ञानी राग में नहीं हैं, ज्ञान में ही हैं। ऐसे निर्मल भेदविज्ञान से प्राप्त नित्य ज्ञानचेतना के स्वामित्व से ज्ञानी रागादि सर्व व्यवहार-भावों से मुक्त हैं।●

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 27, अंक 5

चैतन्यतत्त्व ही उपादेय है

निर्विकल्प शांत अनुभूति से आत्मा वेदन में आता है; उस अनुभूति से विपरीत ऐसे जो राग-द्वेष-मोह, उनसे उत्पन्न हुए कर्म और उन कर्मों से निर्मित यह देह—इस देह से पार अतीन्द्रिय आत्मा को जहाँ अनुभूति में लिया, वहाँ पर का संबंध समाप्त ही हो गया, कर्म और राग-द्वेष भी पृथक् हो गये। जहाँ शुद्धात्मा की अनुभूति नहीं है, वहीं पर राग-द्वेष-कर्म और शरीर का संबंध है। परंतु जहाँ अनुभूति द्वारा स्वयं अपने में ही स्थित रहा, वहाँ पर का संबंध भी नहीं रहा, और अशुद्धता भी नहीं रही। इसप्रकार शुद्ध परमात्मतत्त्व की भावना से संसार का नाश हो जाता है।

समभाव में स्थित मुनियों को और धर्मात्माओं को परम आनंद उत्पन्न करनेवाला जो परमतत्त्व अंतर में स्फुरायमान होता है—उसी को तू शुद्धात्मा समझ।—जितना भी व्यवहार है, वह सब शुद्धात्मा के अनुभव से बाहर ही रह जाता है। अहा, परम तत्त्व को जहाँ ध्यान में लिया, वहाँ वह तत्त्व परम अपूर्व आनंदरूप है। अहा, संतों को ऐसा तत्त्व परम प्रिय है। तू उसे उपादेय मानकर ध्यान कर। जगत में आनंददायक अगर कोई हो तो केवल यह परम चैतन्यतत्त्व ही है; इसलिये यही उपादेय है; जो आनंददायक न हो, वह उपादेय किसप्रकार कहला सकता है? जो उपादेय होता है, वही आनंददायक ही होता है; जो तत्त्व आनंद की प्राप्ति न कराये, उसे कौन आदरणीय मानेगा?

वैराग्यसमाचार

मेरठ : श्री नरेन्द्रकुमार जैन का शान्तपरिणाम से देह-परिवर्तन हो गया है। आप श्री अतुल जैन एवं अम्बुज जैन मेरठ के पिताश्री थे।

इंदौर : श्री कान्तिलाल बड़जात्या का शान्तपरिणाम से देह-परिवर्तन हो गया है। आप श्री सुनील बड़जात्या के भाई और श्री कीर्ति बड़जात्या, रतलाम इंदौर के पिता थे।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

जिस प्रकार–उसी प्रकार में छिपा रहस्य

जैसे– अगाध समुद्र में रहा हुआ वडवानल महान समुद्र को भी बाधा उत्पन्न करता है अर्थात् शोषण करता है।

उसी प्रकार– छोटी सी विषयाशा आत्मा के अगाध ज्ञान समुद्र को मलिन करती है।

जैसे– बालक सिंह को न पहचानता हुआ बिलाव को ही सिंह मान लेता है।

उसी प्रकार– अज्ञानी जीव निश्चय के स्वरूप को न जानता हुआ व्यवहार ही को निश्चय मान लेता है। अथवा व्यवहार धर्म को ही निश्चय धर्म मान लेता है।

जैसे– शक्कर में मिठास और सफेदपना भरा है अग्नि में उष्णता है।

वैसे– भगवान आत्मा में ज्ञान और आनन्द भरा है।

जैसे– बिना जाने औषधि सेवन करे तो मरण ही होगा ।

वैसे– सम्यग्ज्ञान रहित चारित्र को सेवन करना संसार को बढ़ना है।

जैसे– बिना नींव के महल नहीं बनता अतएव बिना नींव का बना सुन्दर महल भी असुरक्षित है। शीघ्र ही गिर जाता है।

वैसे– बिना सम्यग्दर्शन के चारित्र नहीं होता। व्यवहार चारित्र भी संसार का कारण है।

जैसे– एक के बिना कितने ही शून्य लिखे कोई कीमत नहीं हैं।

वैसे– सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र की मोक्षमार्ग में कोई कीमत नहीं है, शून्य तुल्य ही है।

जैसे– गधे के सींग कहना असत्य है।

वैसे– मिथ्यात्व सहित व्यवहार चारित्र को मोक्ष का कारण कहना असत्य है।

जैसे– आकाश में फूल कहना झूठ है।

वैसे– इन्द्रिय जनित सुखाभाष को आत्मिक सुख मानना झूठ है।

जैसे– हार के व्यापारी के घर में आग लग जाये और वह आग बुझाने से न बुझे तो जैसे अपना व्यवहार न बिगड़े ऐसा प्रयत्न करता है।

वैसे– धर्मात्मा शरीर में व्याधि होने पर उसे निर्दोष रीति से मिटाता है, मिटने पर जिससे अपना धर्म न बिगड़े वैसा संन्यास (सल्लेखना, समाधि मरण) धारण है। **क्रमशः**

संकलन – प्रो० पुरुषोत्तम कुमार जैन, रुड़की

साधक की अपूर्व एवं उत्कृष्ट भावना

पधारो ज्ञायकदेव, पधारो!

'हे जिनेन्द्रदेव! आपके प्रताप से ही मेरे अन्तर में ज्ञायकदेव पधारे हैं।' ज्ञायकदेव के प्रति झुका हुआ मेरा परिणमन, निरन्तर मानो कह रहा हो कि "पधारो ज्ञायकदेव, पधारो!", मेरे अन्तर के महल में विराजो।

हे ज्ञायकदेव! आपके, मेरे अंतर महल में पधारने से, मैं आनन्द के सागर में डूब गया. . . प्रतीत होता हूँ; मानो, मेरे प्रदेश – प्रदेश से आनन्द की रश्मियाँ फूट रही हों। मैं, विमूढ़ जैसा हो गया हूँ। मुझे समझ नहीं आ रहा कि अनन्त – अनन्त शक्तियों से परिपूर्ण हे ज्ञायकदेव! मैं, आपका किस प्रकार से आदर करूँ ; आपको मैं किस प्रकार से वन्दन करूँ ; आपकी मैं, किस प्रकार से पूजा करूँ ; किस प्रकार से आपकी स्तुति करूँ ?

अब यहाँ, आदरणीय – वंदनीय – पूजनीय भी स्वयं है और आदर करनेवाला, वंदन करनेवाला और पूजन करनेवाला, स्तुति करनेवाला भी स्वयं ही है। सभी भेद, अस्त हो गये हैं। सब एक ही प्रतीत होता है ; भिन्न – भिन्न नहीं। आपके पधारनेमात्र से (अनुभूतिमात्र से), मैं, रोमांचित हो उठा हूँ। पधारो, प्रभु पधारो! मेरे अंतर–महल को ही अपना चिर–निवास बनाओ। आपके, मेरे अंतर महल में पधारने पर, प्रतिक्षण मेरी दृष्टि, ज्ञायकदेव पर ही लगी हुई है। अब, मेरी दृष्टि, प्रतिपल – प्रतिक्षण ज्ञायकदेव पर ही टिकी रहना चाहती है।

दृष्टि बाहर आनेपर, ये बाह्य नेत्र एकाग्र हो तो मात्र जिनेन्द्रदेव पर। अब जिनेन्द्रभक्ति तो क्या, कोई भी कार्य करते हुए दृष्टि, ज्ञायकदेव पर ही टिकी रहती है। दृष्टि, ज्ञायकदेव पर जमीं सो जमीं ; वहां से पीछे लौटती ही नहीं। मेरे, अनंत – अनंत गुणों में यथायोग्य शुद्धि प्रगट हुई प्रतीत होती है और दृष्टि उन अनंत गुणों के समूह ज्ञायकदेव पर ही बनी रहती है। जैसे – भगवान के दर्शन करते नेत्र, वहां स्थिर हो जाते हैं; वैसे

ही ज्ञायकदेव के दर्शन होनेपर, अन्दर के नेत्र – दृष्टि, वहीं चिपक जाती है। दृष्टि, चिपकते, ज्ञान भी वहां कथंचित् जम जाता है और फिर उपयोग, बाहर जिनेन्द्रदेव पर और फिर अंतर ज्ञायकदेव पर, इस प्रकार अंदर – बाहर, करते – करते, अंदर में पूर्ण जम जाता है। इसी का नाम, पूर्णज्ञान – क्षायिकज्ञान – केवलज्ञान है।

अहो! ज्ञायकदेव और जिनेन्द्रदेव की महिमा अपरम्पार है।

कुदरत में कैसा सुमेल है कि जगत में ज्ञायकदेव, अकृत्रिम स्वयंसिद्ध शाश्वत हैं; ज्ञायकदेव को पूर्ण प्रगट करनेवाले, साक्षात् चैतन्य – रत्नाकर तीर्थंकर भगवन्त भी प्रवाहरूप से, नित्य शाश्वत विराजमान हैं; जगत में उनका कभी विरह नहीं है। चैतन्य रत्नाकर तीर्थंकर भगवन्तों के प्रतीकरूप अकृत्रिम स्वयंसिद्ध, रत्न निर्मित जिनबिम्ब भी लोक में शाश्वतरूप से विराजमान हैं। जगत में, ऊपर और नीचे – वैमानिक स्वर्ग, मध्यलोक में भवनवासी के भवन, ज्योतिष और व्यन्तरों के स्थानों में – असंख्यात विशाल, अकृत्रिम रत्नमय जिनमन्दिर और जिनप्रतिमाएँ हैं। मन्दिर भी रत्नों के और भगवान भी रत्नों के!! 500 – 500 धनुष प्रमाण जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाएँ। अकृत्रिम, अति मनोज्ञ, जिनेन्द्र भगवान सदृश प्रतिमाएँ, मानो, अभी दिव्यध्वनि छूटेगी।

अब साधक को, साधक अर्थात् ज्ञायकदेव ; साधन अर्थात् जिनदेव सदृश रत्नमयी अकृत्रिम जिनबिम्ब और साध्य अर्थात् जिनेन्द्रदेव – इन तीनों का अंतर भी मिटता जाता है। मेरा ज्ञायकदेव ही उत्कृष्ट साधक है ; वही परम साधन है ; वही ज्ञायकदेव, परम साध्य है। अब, यह तीन नहीं, एक ज्ञायकदेव. . . ज्ञायकदेव. . . ज्ञायकदेव ही भासित होता है।

जयवंत वर्तो. . . ज्ञायकदेव! जयवंत वर्तो. . . जिनेन्द्रदेव!!, जिनकी महान अनुकम्पा से, साधक की ऐसी अपूर्व एवं उत्कृष्ट भावना होती है।

– वर्तमान के प्रत्यक्ष परम उपकारी अध्यात्म युगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, एवं समस्त ज्ञानी महात्माओं के पद्मसम पवित्र पाद युगलों में नमन–शत् – शत् वन्दन।

ॐ

समाचार-दर्शन

केवल विदुषी बहिनों द्वारा
सोलहकारण भावना ई-संगोष्ठी

जयपुर : लॉकडाउन के समय का सदुपयोग करने के लिए सर्वोदय अहिंसा ट्रस्ट, जयपुर द्वारा अनेक कार्यक्रमों का आयोजन विगत छह माह से किया जा रहा है, इसी क्रम में रविवार 13 सितम्बर से 20 सितम्बर 2020 तक **सोलहकारण भावना ई-संगोष्ठी** का आयोजन किया गया, जिसमें देश-विदेश के हजारों साधर्मियों ने भाग लिया। कार्यक्रम का संयोजन श्रीमती प्रीति जैन, जयपुर एवं श्रीमती रागिनी जैन, आगरा ने किया।

ज्ञातव्य है कि समस्त कार्यक्रम का आयोजन, संचालन, संयोजन केवल विदुषी बहिनों द्वारा किया गया।

आठों दिन के अध्यक्ष— श्रीमती गुणमाला भारिल्ल, श्रीमती कमला भारिल्ल, श्रीमती कुसुम चौधरी, श्रीमती सुनीता जैन, श्रीमती लता जैन, ब्रह्मचारी पुष्पादीदी झांझरी, श्रीमती शिल्पा मोदी। **आठों दिन का संचालन—** श्रीमती शुचिता राठी, श्रीमती दीक्षा जैन, श्रीमती अनुभूति लुहाड़िया, सुश्री सर्वदर्शी भारिल्ल, श्रीमती स्तुति जैन, सुश्री प्रज्ञा जैन, श्रीमती ज्योति मोदी। **वक्तव्य—** ब्रह्मचारी प्रज्ञा दीदी, डॉ. ज्योति सेठी, विदुषी अनु शास्त्री, विदुषी पूजा शास्त्री, विदुषी श्रुति शास्त्री, ब्रह्मचारी आरती दीदी, सुश्री आयुषी जैन, ब्रह्मचारी प्रीति दीदी, शाश्वत् मानसी जैन, डॉ. स्वाति जैन, विदुषी नैना शास्त्री, श्रीमती पूजा भारिल्ल। इस अवसर पर विदुषी राजकुमारी सनावद, श्रीमती अनीता अजितभाई बड़ोदा, पण्डित शुद्धात्म भारिल्ल, एवं श्री अजितभाई बड़ोदा का विशेष उद्बोधन प्राप्त हुआ।

सम्पूर्ण गोष्ठी का सफल संचालन पण्डित अजित शास्त्री, अलवर; पण्डित संजय शास्त्री, जयपुर; पण्डित विनीत शास्त्री, हटा। सम्पूर्ण गोष्ठी को सर्वोदय अहिंसा के चैनल पर प्रसारित किया गया।

आगामी कार्यक्रम

संगोष्ठी का आयोजन

दिल्ली : जैनिज्म थिंकर यूट्यूब एवं जूम चैनल पर ज्ञानचेतना ट्रस्ट दिल्ली के माध्यम से दिनांक 23 अक्टूबर 2020 से 26 अक्टूबर 2020 तक तत्त्वार्थ सूत्र विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया जाएगा। नीरज जैन, 9310860590

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी की 300वीं जन्म-जयन्ती के अवसर पर, श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा आयोजित

'जन्म-जयन्ती वार्षिक महोत्सव' विशाल ज्ञानयज्ञ में

श्री कुन्दकुन्द-कहान-पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई एवं

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ द्वारा

ग्रन्थकर्ता के चरणों में

भावभीनी आहूति

'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रन्थ सेट

संक्षिप्त परिचय

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी के त्रिशताब्दी जन्मजयन्ती के पावन अवसर पर, उनकी अनुपम कृति '**मोक्षमार्गप्रकाशक**', उसी के आधार पर '**श्री मोक्षमार्गप्रकाशक प्रश्नोत्तरी**', '**श्री मोक्षमार्गप्रकाशक दृष्टान्तवैभव**' में समागत सारभूत दृष्टान्तों एवं सिद्धान्तों पर आधारित कृति प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। नवीन पाठकों को मूल ग्रन्थ के अध्ययन की प्रेरणा जागृत हो, इस उपलक्ष्य में सभी स्वाध्याय भवनों, मुमुक्षु संस्थाओं एवं प्रवचनकार विद्वानों को नि:शुल्क सप्रेम भेंट स्वरूप प्रदान किया जा रहा है।

मोक्षमार्गप्रकाशक – तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा द्वितीय बार आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा विरचित मोक्षमार्गप्रकाशक की मूल हस्तलिखित प्रति से पुन: मिलान करके, आधुनिक खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ है।

मोक्षमार्गप्रकाशक प्रश्नोत्तरी – प्रस्तुत प्रश्नोत्तरमाला में प्रत्येक अधिकार के आधार पर हैडिंग के अनुसार प्रश्नोत्तर का विभाजन किया गया है। जहाँ-जहाँ विषयवस्तु की दृष्टि से गरिष्ठता लगी, वहाँ उन विषयों को विशेष स्पष्ट किया गया है।

मोक्षमार्गप्रकाशक दृष्टान्त वैभव – जिनागम में गहन सिद्धान्तों को सहज हृदयग्राह्य बनाने के पावन उद्देश्य से, सुगम दृष्टान्तों की परम्परा रही है। इन्हीं दृष्टान्त-सिद्धान्त के माध्यम से पण्डितप्रवर टोडरमलजी ने जनसामान्य को जिनागम के गूढ़ सिद्धान्त सरल रीति से समझाये हैं। ऐसे अनेक दृष्टान्तपूर्वक जिनागम के आधारभूत सिद्धान्तों को चित्रित करके कृति को रोचक बनाने का प्रयास किया गया है।

'मोक्षमार्गप्रकाशक', 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक प्रश्नोत्तरी', 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक दृष्टान्तवैभव' का सेट

मँगाने का फार्म

नाम.....

.....

पता .....

.....

..... पिन कोड .....

संस्था / मन्दिर का नाम .....

.....

संस्था / मन्दिर के प्रमुख का नाम .....

.....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

आप, हमारे ग्रन्थमाला के सम्माननीय सदस्य हैं / नहीं .....

प्रतियों की संख्या .....

नोट - ग्रन्थ की उपलब्धता के अनुसार ही आपको भेंट किए जाएँगे। आप अपना फार्म भरकर ईमेल कर देवें।

हस्ताक्षर

ग्रन्थ मँगाने का पता—

प्रकाशन विभाग, तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा राजमार्ग,
सासनी-204216 (हाथरस) उत्तरप्रदेश
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

वैराग्य वाणी

जगत में दिखता है कि लक्ष्मी क्षण में चली जाती है। क्षण में देह का विनाश हो जाता है और युवावस्था पलटकर वृद्धावस्था हो जाती है। अरे! बीस-पच्चीस वर्ष के युवा मनुष्य क्षण में जीवन पूर्ण करके चले जाते हैं। प्रत्यक्ष में ऐसी अनित्यता देखकर भी जीव मोह के कारण उन शरीर-धन-जीवन इत्यादि को नित्य मानकर उनमें मोहित हो रहा है, यह महा आश्चर्य है। किसी को मृत्यु आदि प्रसङ्ग देखकर क्षणिक वैराग्य आता है, उसकी बात यहाँ नहीं है। यह तो ध्रुव चैतन्य की भावनासहित, अनित्य पदार्थ के प्रति वैराग्य की बात है।

जैसे स्वप्न स्थिर नहीं रहता; वैसे ही शरीर, धन आदि भी जीव के पास स्थिर नहीं रहते। वे तो क्षणिक हैं। युवा शरीर हो और शादी करने जाए, वहाँ मण्डप मे ही आयु पूर्ण हो जाती है - ऐसे प्रसङ्ग देखकर भी मूढ़ जीव स्वयं अन्तर में ध्रुव द्रव्यस्वभाव की सन्मुखता नहीं करता, यह महा आश्चर्य है। धर्मात्मा को तो सदा ही ध्रुव चैतन्य के भानपूर्वक संयोग में अनित्यता की भावना रहती है। पर्याय को स्थिर रखने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं है; इसलिए उस पर्याय की भावना को छोड़कर, तेरी विद्यमान ध्रुव ज्ञायकशक्ति की भावना कर! तेरे अन्दर केवलज्ञान का भण्डार भरा है, उसे खोल!

अहो! अरहन्तों से कथित मेरा आत्मस्वभाव ही मुझे शरण है। अज्ञानी जीव, मोह के वशीभूत होकर मन्त्र-तन्त्र-पूजा इत्यादि उपाय करके जीवन बनाये रखना चाहता है परन्तु मृत्युकाल में वे कोई शरण नहीं होते। किसी का इकलौता पुत्र मरणासन्न हो और कोई कहे कि अमुक मनौती करे तो पुत्र मरने से बच जाएगा, तो भगवान का भक्त इस बात को नहीं मानता।

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

बाह्यप्रवृत्ति का कारण परिणाम

प्रश्न : जो धर्मार्थी होकर जैनशास्त्रों का अभ्यास करता है, उसके विषयादिक का त्याग न हो सके, ऐसा तो नहीं बनता; क्योंकि विषयादिक का सेवन परिणामों से होता है और परिणाम स्वाधीन होते हैं।

उत्तर : परिणाम दो प्रकार के हैं– एक बुद्धिपूर्वक, एक अबुद्धिपूर्वक। वहाँ जो परिणाम अपने अभिप्राय के अनुसार हों, वे बुद्धिपूर्वक और जो परिणाम दैव (कर्म) निमित्त से अपने अभिप्राय से अन्यथा (विरूद्ध) हों, वे अबुद्धिपूर्वक।

जिस प्रकार सामायिक करते समय धर्मात्मा का अभिप्राय तो ऐसा होता है कि मैं अपने परिणाम शुभरूप रखूं, वहाँ जो शुभ परिणाम ही हों, वे तो बुद्धिपूर्वक हैं और यदि कर्मोदय से स्वयमेव अशुभ परिणाम हों, वे अबुद्धिपूर्वक जानना।

उसी प्रकार धर्मार्थी होकर जो जैनशास्त्रों का अभ्यास करता है, उसका अभिप्राय तो विषयादिक के त्यागरूप वीतरागभाव की प्राप्ति का ही होता है। वहाँ पर वीतरागभाव होता है, वह बुद्धिपूर्वक है और चारित्रमोह के उदय से (उदय के वश होने पर) सरागभाव होता है, वह अबुद्धिपूर्वक है। अतः स्ववश बिना (परवश) जो सरागभाव होते हैं, उनसे उसकी विषयादि की प्रवृत्ति दिख रही है; क्योंकि बाह्यप्रवृत्ति का कारण परिणाम है।

सम्यग्ज्ञानचंद्रिका : पीठिका

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com